

ज्यों मेंहदी को रंग उपन्यास में दिव्यांग विमर्श

वन्दना पाण्डेय,

शोधार्थी,
हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
लखनऊ

डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव,

अध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
लखनऊ

शोध सारांश

शारीरिक और मानसिक अक्षमता को दिव्यांगता के रूप में देखा जाता है। इस समय पूरे विश्व की लगभग पन्द्रह प्रतिशत जनसंख्या किसी न किसी प्रकार की दिव्यांगता से ग्रस्त है। दिव्यांगों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए सरकार द्वारा अनेक प्रयास किये जा रहे हैं। साथ ही साथ साहित्य में एक नये विमर्श दिव्यांग विमर्श के माध्यम से हाशिये के इन लोगों को मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है। मृदुला सिन्हा का उपन्यास 'ज्यों मेंहदी को रंग' दिव्यांग विमर्श पर लिखा गया हिन्दी का प्रमुख उपन्यास है। उपन्यास के केन्द्र में शालीन एवं डॉ० अविनाश है। डॉ० अविनाश एवं शालिनी दोनों ही दुर्घटना जन्य विकलांगता से पीड़ित हैं एवं दिव्यांगता के कारण अपने परिवार से उपेक्षित हैं। यह उपन्यास शारीरिक रूप से अक्षम लोगों की मानसिक, दृढ़ इच्छा शक्ति एवं सेवा भावना को पाठक के समक्ष रखता ही है, साथ ही शारीरिक रूप से सक्षम लोगों की मानसिकता की भी पोल खोल देता है। यह उपन्यास स्वानुभूति एवं स्वप्रेरणा को आदर्श बनाकर लिखा गया है। इसलिए यह दिव्यांगों की शारीरिक एवं मानसिक स्थितियों के बहुत निकट है। दिव्यांग विमर्श पर लिखा गया यह उपन्यास सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयत्नों से बढ़कर स्वयं दिव्यांगों की मानसिकता में परिवर्तन की राह दिखाता है।

Key words : ज्यों मेंहदी को रंग, दिव्यांग, विमर्श, दिव्यांगता, शारीरिक अक्षमता, उपन्यास ।

शारीरिक एवं मानसिक असमान्यता दिव्यांगता कही जाती है। दिव्यांगता के लिए पहले पंगुता, न्यूनता, विकलांगता आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता रहा है। दिव्यांगता एक प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक विकृति है। यह एक अवांछित घटना है जो कभी कभी व्यक्ति में आत्मविश्वास की कमी एवं हीनता बोध भर देती है तो कभी कभी व्यक्ति स्व प्रेरणा से ऐसे ऐसे काम कर देता है कि समाज उसे प्रेरणास्रोत मानने लगता है। प्राचीन भारतीय समाज में भी ऐसे अनेक व्यक्ति थे जो शारीरिक रूप से असामान्य होते हुये भी अपनी

विशेष प्रतिभा के बल पर समाज के लिए आदरणीय बनें।

महर्षि अष्टावक्र, दीर्घतया, महाकवि सूरदास, मलिक मुहम्मद जायसी आदि ऐसे ही प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं।

दिव्यांगता को निशक्तता के रूप में भी देखा जाता है। वास्तव में दिव्यांगता (विकलांगता) से ग्रसित व्यक्ति वह है, जो किसी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक अथवा संवेदनशीलता सम्बन्धी विकृति से ग्रसित है, जिसके कारण विभिन्न बाधाओं सहित समाज में अन्य के साथ प्रभावी

सहभागिता करता है अथवा किसी विकलांग व्यक्ति को समाज में पूर्ण या आंशिक सहभागिता से रोकता है। इस समय पूरे विश्व की लगभग पन्द्रह प्रतिशत जनसंख्या किसी न किसी प्रकार की दिव्यांगता से ग्रस्त है। भारत में यह संख्या लगभग 268 लाख है। विभिन्न प्रकार की विकृतियों से ग्रस्त इन व्यक्तियों को शारीरिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। समाज एवं परिवार का असहयोगात्मक रवैया, हाशिये के इन लोगों का जीवन और कठिन बना देता है।

दिव्यांगता का सम्बन्ध न तो किसी जाति विशेष से संबंधित है, न किसी लिंग एवं भौगोलिक क्षेत्र से। स्त्री पुरुष, दलित स्वर्ण, आदिवासी, गैर आदिवासी, कोई भी दिव्यांगता का शिकार हो सकता है। सिर्फ शारीरिक एवं बौद्धिक अक्षमता के कारण हमारे समाज एवं परिवार का यह हिस्सा विकास के दौड़ से बाहर हो जाता है। हमारी सरकार ने विकलांगों के समावेशन एवं पुनर्वास के लिए समय समय पर अनेक कानून, आर्थिक सहायता, अन्य सुविधायें प्रदान करती है। इससे दिव्यांगों का जीवन पहले की अपेक्षा बहुत सुधरा है लेकिन सामाजिक धारणाओं का विकास या समाज में दिव्यांगों को देखने और समझने के ढंग से अभी बहुत बदलाव नहीं हुआ है। स्त्री, दलित एवं आदिवासी विमर्श के द्वारा साहित्य में इन वंचितों के अधिकारों एवं सम्मान के लिए खूब प्रयास किया गया और बहुत हद तक यह कहा जा सकता है कि इन प्रयासों से इनके जीवन और सामाजिक स्थिति में सुधार भी हुआ है। वर्तमान समय में दिव्यांगों के अधिकारों और सम्मान के लिए दिव्यांग विमर्श पर भी बात होने लगी है, जिससे दिव्यांगों के मन में आत्मविश्वास, प्रेरणा एवं धारणीय विकास किया जा सके।

नारी अस्मिता के लिए समर्पित लेखिका, समाज सेवी एवं चिन्तक मृदुला सिन्हा का उपन्यास 'ज्यो मेंहदी को रंग' विकलांग (दिव्यांग)

विमर्श को केन्द्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है। लेखिका का यह उपन्यास इसलिए भी विशेष हो जाता है क्योंकि उन्होंने इसे अपने 'भोगे हुये यथार्थ' के रूप में लिखा है। लेखिका ने अपने पुत्र 'परिमल' के स्थान पर शालिनी (कषा नायिका) को स्थापित किया है। दिव्यांगता के विषय में यह कहा जाता है कि, "घायल की गति घायल जाने", या 'जाके पांव न फटे बिवाई, वो क्या जाने पीर पराई' लेकिन यह भी सच है कि दिव्यांगता की पीड़ा दिव्यांग के साथ-साथ उसके परिजनों, आत्मीयों एवं अभिभावकों को भी होती है। उपन्यास की भूमिका में लेखिका उपन्यास को स्वानुभूति के साथ-साथ उन तमाम माता-पिता की स्थिति और पीड़ा का वर्णन बताती है जो दुभाग्य से दिव्यांगता से शिकार बच्चे की जिम्मेदारी उठाते हैं। उपन्यास की भूमिका में लेखिका कहती है, "अपने स्व० पुत्र परिमल के प्रति किस भाव एवं भाषा में अपना आभार व्यक्त करूं। सच कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उसकी उस स्थिति ने ही मुझे इस उपन्यास की रचना के लिए बाध्य किया। अपना शरीर क्या, उंगली भी एक इंच हिला पाने में असमर्थ परिमल अपने अट्टारह वर्षीय जीवन में दस वर्षों तक हमारे उपर पूर्ण रूपेण निर्भर था। परन्तु न मैं, न उसके पिता, न चाचा अभय सिंह, न दोनों भाई और न नन्हीं बहन मीनाक्षी, किसी ने भी उसकी दिव्यांगता कबूल नहीं की।

दिव्यांग विमर्श पर लिखा गया यह उपन्यास विकलांग व्यक्तियों की सेवा को त्याग एवं तप की तरह प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास का शीर्षक है 'ज्यों मेंहदी को रंग। यह शीर्षक रहीम के प्रसिद्ध दोहे का उल्लेख है –

"यो रहीम सुख उपजै, उपकारी के संग।

बाटन बारै को लगै, ज्यों मेंहदी को रंग।"

लेखिका ने इस शीर्षक के माध्यम से यह बताना चाहा है कि सेवा, त्याग एवं तप मेंहदी की तरह है। जिस प्रकार मेंहदी बांटने वाले के हाथ मेंहदी

बांटने से लाल हो जाता है उसी प्रकार त्याग एवं सेवा में लिप्त रहने वाले मनुष्य को आत्मिक सुख प्राप्त होता है।

प्रस्तुत उपन्यास के केन्द्र में शालिनी है। शालिनी दुर्घटनाजन्य दिव्यांगता का शिकार हो जाती है। इस दिव्यांगता से पूर्व शालिनी का जीवन चाहे मायके में हो या ससुराल में, बहुत ही सुखी था। शालिनी रूप और गुणों की खान थी। वह अपने विवाह से खुश थी। उसका पति राकेश भी उसकी सुन्दरता, चपलता, कार्यकुशलता और संस्कारों से प्रभावित था। शालिनी अपनी सास को भी बहुत पसन्द थी। उसकी सास हमेशा चाहती थी कि मीनाकारी वाली पायल पहनकर शालिनी हमेशा घर में नववधू की चलता का एहसास कराये। एक दुर्घटना में शालिनी के दोनों पैर स्टीमर के डेक से उतरते हुये कट जाते हैं। यही से शुरू होता है – शालिनी का दिव्यांगता जन्य संघर्षमय जीवन।

प्रायः देखा गया है कि विकलांगता का दंश झेलने वाला व्यक्ति भले ही सामान्य जीवन जीने के लिए संघर्ष करता है लेकिन उसके परिवारीजन और समाज पहले ही उसकी उपेक्षा करने लगते हैं। दुर्घटना से पूर्व जो शालिनी परिवार के लिए प्रसन्नता और गौरव की बात थी, वहीं पैर कट जाने के बाद बोझ लगने लगी। उसकी सास को यही चिन्ता सताने लगी कि एक 'अपाहिज' लड़की के साथ उसका पुत्र कैसे रह पायेगा। समाज और परिवार का यह असहयोग पूर्ण व्यवहार दिव्यांगों का जीवन और मुश्किल कर देते हैं। आज समय में भी दिव्यांगों को न तो परिवार वाले खुशी खुशी स्वीकार करते हैं और न समाज। समाज के इसी दोहरे रवैये को चित्रित करते हुये दददा जी कहते हैं, "मुझे तो तुम्हारा समाज की पंगु दिख रहा है। ... दूर क्यों जाते हो ! अपनी शालू को ही लो न ! तुम्हारे मित्र की बेटी है न? सुना, ससुरालवाले सिर आंखों पर बैठाए रखते थे इसे। मात्र पाव कट गए तो क्या

हो गया? इससे ज्यादा इसके घर वाले निराश हो गए।"

उपन्यास की नायिका शालिनी कृत्रिम पैर लगवाने के लिए दददा जी के संस्था में आती है। शालिनी में सेवा भाव और समर्पण कूट-कूटकर भरा है। दददा जी की संस्था से जुड़ने के बाद वह अपने अतीत की कटु। स्मृतियों को भूलकर स्वयं भी अन्य दिव्यांगों के सेवा एवं सहयोग में लग जाती है। दददा जी की अनुपस्थिति में वह पूरे संस्थान की जिम्मेदारी स्वयं उठाती है।

उपन्यास के एक अन्य मुख्य पात्र है—दददा जी। दददा जी का नाम डॉ० अविनाश है। वह एक एम०बी०बी०एस० डॉक्टर है। दददा जी पूरे समर्पण एवं सहजता से दिव्यांगों की सेवा में समर्पित हैं। वह अपनी संस्था में दिव्यांगों के लिए कृत्रिम अंग बनाते हैं। दूसरों का दुःख वह व्यक्ति बेहतर ढंग से समझता है जो स्वयं इस प्रकार का दुःख झेला हो। उपन्यास के अंत में पता चलता है कि डॉ० अविनाश स्वयं एक दिव्यांग है और विदेश से अपनी डॉक्टर की प्रेक्टिस छोड़कर भारत में दिव्यांगों के सहयोग एवं सेवा के लिए समर्पित है। दददा जी की यह मान्यता है कि दिव्यांगों की सेवा में लिए उनकी तरह सोचना या सवानुभूति महत्वपूर्ण है। दिव्यांगों के प्रति समाज और परिवार की उपेक्षा पर चिन्ता प्रकट करते हुये दददा जी शर्मा जी से कहते हैं, "मेरे पास देश के कोने कोने से वैसे लोग आ रहे हैं, जो तुम्हारी सामाजिक, सरकारी व्यवस्था की चक्की में पिसकर निकले होते हैं। अधूरे पैरे पर चलते व्यक्ति को जीने में जो कठिनाइयाँ आती है, दोनों पांव पर चलता व्यक्ति उन्हें नहीं महसूस कर सकता। दिव्यांग व्यक्ति समाज की उपेक्षा का शिकार तो होता है लेकिन सबसे दुखद यह है कि परिवार के लोग यहां तक कि पति, पत्नी बच्चे भी दिव्यांग को बोझ समझने लगते हैं। डॉ० अविनाश की पत्नी भी उन्हें छोड़कर सिर्फ इसलिए ही चली जाती है क्योंकि वे दिव्यांगता

का शिकार हो गये थे। परिवार द्वारा दिव्यांगों की उपेक्षा और तिरस्कार से दिव्यांगों में स्वयं भी हीनता बोध जन्म लेने लगता है। ऐसा व्यक्ति समाज एवं परिवार से कटने लगता है। दददा जी हते हैं, “तुम सरकारी और सामाजिक सहायता की बात करते हों, सच्चाई तो यह है कि जिनके अंग कट गए हों, उनके घर वाले पति पत्नी बच्चों पास रहकर भी दूर हो जाते हैं। पैसा कमाना जो उसके लिए मुश्किल हो जाता है। दूसरों को उसकी सेवा जो करनी पड़ती है और सच तो यह है शर्मा कि मात्र हाथ और पैर कटने से ही वह व्यक्ति स्वयं दुनिया से कटने लगता है। वह भी आदमी है, लोग भूल जाते हैं।

इंग्लैण्ड में रहते हुये डॉ० अविनाश की पत्नी उन्हें सिर्फ इसलिए ही छोड़कर चली जाती है, क्योंकि उनके दोनों पैर एक दुर्घटना में कट गये। परिवार के इस उपेक्षा से डॉ० अविनाश के मन में दिव्यांगों की सेवा का भाव जागृत होता है। वह सोचते हैं कि विश्व के अन्य देशों में तो स्थिति अच्छी है। भारत में तो दिव्यांगों की दशा अधिक सोचनीय है। इस घटना ने डॉ० अविनाश में एक नई प्रेरणा और ऊर्जा का संचार किया। वह अपने जैसे ही तमाम दिव्यांगों के विषय में सोचने लगते हैं। दददा जी स्वयं कहते हैं, “इंग्लैण्ड जैसे विकसित देश में अपंग होना कोई समस्या ही नहीं। और मैं हास्पिटल के बिछावन पर पड़ा-पड़ा सोचा करता, क्या अपंग होना अभिशाप है? क्या अपंग अपने लोगों से वैसे ही कर जाते हैं, जैसे मैं मैं कट गया था तुमसे. अपने इकलौते बेटे से ? तभी मेरे मन में खयाल आया कि अपने देश लौट जाऊं। वहाँ के अपंगों की सेवा करूँ।

डॉ० अविनाश और शालिनी के अतिरिक्त संस्था के सभी पात्रों में अदम्य जीवनी शक्ति और ऊर्जा के दर्शन होते हैं। संस्था के लगभग सभी पात्र किसी न किसी प्रकार की विकलांगता से पीड़ित है एवं सभी के शरीर में कोई न कोई

कृत्रिम अंग लगा हुआ है फिर भी सभी इसकी अनुभूति न करके जीवन को एक नये राग से जीते हैं।

उपन्यास में सामाजिक और शासकीय तंत्र की बुराइयों पर भी चर्चा की गई है। डॉ० अविनाश दिव्यांगों को अपाहिज एवं अपंग कहने का विरोध करते हैं। उनके अनुसार शारीरिक रूप से अक्षम व्यक्ति को अपाहिज एवं अपंग नहीं कहा जाना चाहिए। अपंग तो वे लोग हैं जो नैतिक और विचारात्मक रूप से कुण्ठित हैं। डॉ० अविनाश शर्मा जी से कहते हैं, “शारीरिक अपंगता से भावों की अपंगता ज्यादा खतरनाक है शर्मा ! शारीरिक विकलांगों को यह दुनिया सही ढंग से देखती रही। शारीरिक अपंग व्यक्ति अपने लिए बेकार होता है लेकिन ये भावनात्मक अपंग लोग तो दूसरों को बेकार बनाते हैं, सारे समाज को पंगु बना बैठते हैं। सारा समाज पंगु है। तभी तो ...। उपन्यास में यह प्रश्न भी उठाया गया है कि भले ही सरकार ने दिव्यांगों के लिए अनेक कानून बनाये हैं, दिव्यांगों को अनेक सुविधायें प्रदान की हैं लेकिन यह सुविधायें दिव्यांगों तक पहुँचती ही नहीं हैं। लोग फर्जी सर्टिफिकेट बनवाकर अपात्र होते हुये भी दिव्यांगों की सुविधाओं का लाभ लेते हैं, वहीं वास्तव में दिव्यांग व्यक्ति को स्वयं को दिव्यांग साबित करने में बहुत पापड़ बेलने पड़ते हैं। यहां तक कि दिव्यांगों लिए मिलने वाले सरकारी अनुदान भी लोग अपनी स्वार्थ सिद्धि ही कर रहे हैं। डॉ० अविनाश के शब्दों में, “आज समाज सेवा के नाम पर धरौंदा ही तो बना है, लोग। अपना मतलब साध रहे हैं। इन अपंगों की लाठी के सहारे, कितने लोग सरकारी अनुदान ले आते हैं। उनकी सेवा का ढोंग रचकर अपना नाम कमा लेते हैं। स्वयं फूलमालाओं से लद जाते हैं, उनके लिए तो कांटे ही कांटे बच जाते हैं। ये अपनी बैसाखियों को कहां कहां दौड़ाये।

डॉ० अविनाश और शालिनी के द्वारा लेखिका ने दिव्यांगों की सेवा भावना और

सकारात्मकता का सुन्दर चित्रण किया है। लेखिका ने उपन्यास में दिव्यांगों की कई मानसिक और शारीरिक समस्याओं का समाधान किया है। उपन्यास के अंत में लेखिका ने डॉ० अविनाश और शालिनी के जीवन का सुन्दर समाधान भी प्रस्तुत किया है। डॉ० अविनाश और शालिनी दिव्यांग होते हुये अपना जीवन दिव्यांगों एवं असहायों की सहायता के लिए संकल्पित कर देते हैं। डॉ० सारिका कालरा के अनुसार, "मृदुला जी का यह उपन्यास शारीरिक रूप से अक्षम लोगों की मानसिकता, उनकी बौद्धिकता, उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ-साथ शारीरिक रूप से सक्षम लोगों की मानसिकता को भी हमारे समक्ष रखता है। इनके अंतर को हम इस उपन्यास में बड़ी गहराई से अनुभव कर सकते हैं। उपन्यास में स्थान-स्थान पर ऐसे संकेत हैं जहां सफेद पोश व्यक्तियों में, और समाज सेवा के नाम पर एक कलुषित छाप हमें दिखाई देती है। उपन्यास के विकलांग पात्र कहीं भी दयनीय, असमर्थ और बेचारे नहीं हैं।

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि उपन्यासकार मृदुला सिन्हा का यह उपन्यास दिव्यांग विमर्श का नया आदर्श प्रस्तुत करता है। यह स्वानुभूति पर लिखा गया उपन्यास है इसलिए यह दिव्यांगों के जीवन की शारीरिक एवं मानसिक स्थितियों के बहुत निकट है। इस उपन्यास में विभिन्न दिव्यांग पात्रों एवं उनकी समस्याओं के साथ-साथ उन समस्याओं का निदान भी प्रस्तुत कर दिया गया है। यह उपन्यास सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयत्नों से बढ़कर स्वयं दिव्यांगों की मानसिकता में परिवर्तन

की राह दिखाता है। ज्यों मेंहदी को रंग उपन्यास के पात्र दिव्यांगों के लिए प्रेरणास्पद एवं अनुकरणीय है। प्रस्तुत उपन्यास में दिव्यांगता को अभिशाप एवं बेचारगी की तरह नहीं, अपितु जीवनी शक्ति, सेवा, त्याग एवं मजबूती के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. माहेश्वरी डॉ० सुरेश(सं०) विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, भावना प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2014, पृ० 194
2. सिन्हा मृदुला, ज्यों मेंहदी को रंग, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2016, भूमिका से।
3. सिन्हा मृदुला, ज्यों मेंहदी को रंग, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2016, पृ० 65
4. सिन्हा मृदुला, ज्यों मेंहदी को रंग, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2016, पृ० 61
5. सिन्हा मृदुला, ज्यों मेंहदी को रंग, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ० 61
6. सिन्हा मृदुला, ज्यों मेंहदी को रंग, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2016, पृ० 156-157
7. सिन्हा मृदुला, ज्यों मेंहदी को रंग, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2016, पृ० 33
8. सिन्हा मृदुला, ज्यों मेंहदी को रंग, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2016, पृ० 127
9. माहेश्वरी डॉ० सुरेश(सं०) विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, भावना प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2014, पृ० 517